भारत में विदेशी विश्वविद्यालय और स्कूल के भारी बस्ते

रामानंद[1]

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) ने हाल ही में विदेशी यूनिवर्सिटीज के भारत में शैक्षणिक संस्थान खोलने से जुड़ा एक मसौदा जारी किया है। इसमें कहा गया है कि यूजीसी कुछ शर्तों के साथ विश्व के 500 शीर्ष यूनिवर्सिटीज को भारत में अपने कैंपस खोलने की इजाजत देगा। सरकार की अपनी रिपोर्ट और अनेक अध्ययनों से यह बात सामने आती रही है कि भारत में लोग अपनी आय का बड़ा हिस्सा शिक्षा पर खर्च करते हैं। इसी आय से एक बड़ा हिस्सा उन देशों में भी जा रहा है, जहां भारतीय स्टूडेंट्स पढ़ने जा रहे हैं। यह प्रक्रिया दशकों से चल रही है, जिससे न केवल देश को आर्थिक नुकसान हो रहा है बल्कि इसका मानव संसाधन भी जाया हो रहा है। ऐसा नहीं है कि पिछली सरकारों ने इसके लिए प्रयास नहीं किए। इस संबंध में पहला प्रयास 1995 में हुआ था। 2005-2006 में फिर कोशिश हुई, मगर यह पहल भी किसी नतीजे तक नहीं पहुंच पाई। आखिरी बार ऐसी कोशिश 2010 में हुई, जब इससे संबंधित बिल संसद में पेश किया गया था। तब उसे फिर स्टैंडिंग कमिटी को भेज दिया गया। उसके बाद इस विषय पर 2016 से चर्चा अवश्य होती रही, मगर कोई ठोस कदम नहीं दिखा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भी इस पर चर्चा हुई। इस बीच कोविड-19, यूक्रेन युद्ध और अन्य अनुभवों ने भी इस धारणा को पुख्ता किया कि भारतीय स्टूडेंट्स को देश में ही अधिकतम अवसर मिलने चाहिए। अगर भारतीय छात्रों के विदेश में उपलब्ध शैक्षणिक विकल्पों को देखें तो पाएंगे कि अधिकतर स्टूडेंट्स मध्यम या निम्न मध्यम संस्थानों का ही रुख करते हैं। इस दृष्टि से यह अच्छा कदम है कि विदेशी संस्थानों को भारत में शैक्षणिक परिसर खोलने के लिए नियमों में परिवर्तन किए जा रहे हैं। मौजूदा व्यवस्था इस बात के लिए बधाई की पात्र है कि उसने वह कदम फिर से उठाने का विचार किया जो पहले कई बार असफल हो गया था।

फायदे

भारत में डिजिटल शिक्षा ने भी विदेशी यूनिवर्सिटीज और भारतीय छात्रों के बीच की दूरी को काफी कम किया है। आज के समय में भारतीय कैंपसों में अनेक ऐसे छात्र मिलेंगे,जिन्होंने विदेशी संस्थानों से ऑनलाइन कोर्स किया है। यहां तक कि कुछ संस्थानों ने डिस्टेंस मोड में भी कोर्स चलाने की कोशिश की, जिस पर बाद में नियामक संस्थाओं की ओर से हस्तक्षेप किया गया। यह बात पहले भी स्पष्ट हो चुकी है कि भारत की बढ़ती शैक्षणिक जरूरतों को यहां के शैक्षणिक संस्थान पूरा करने में असमर्थ हैं। भारत की जनसंख्या और हर साल निकलने वाले छात्रों के अनुपात में भारत में शैक्षणिक संस्थान कम हैं। यही कारण है कि भारत सरकार पिछले कई वर्षों से औद्योगिक समूहों से उच्च शिक्षा में निवेश का आग्रह करती रही है। विदेशी शैक्षणिक संस्थानों को भारत बुलाना उसी कड़ी में अगला कदम है।अगर विश्व के टॉप 100 संस्थान यहां अपना कैंपस खोलते हैं तो भारतीय शैक्षणिक परिसरों के लिए यह अच्छा अनुभव होगा। यदि मध्यम श्रेणी के संस्थान (100-500 रैंक वाले) भी आते हैं तो भारत के लिए आर्थिक और अन्य दृष्टिकोणों से लाभकारी ही होगा क्योंकि यहां के छात्र इन्हीं संस्थानों में पढ़ने बाहर जा रहे हैं। इससे न सिर्फ विदेशी मुद्रा का नुकसान होगा बल्कि छात्रों को भारत में कम खर्च में बेहतर विकल्प मिलेंगे।

अब सवाल उठता है कि क्या मौजूदा व्यवस्था इस बदलाव के लिए तैयार है? इस प्रश्न के लिए हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति की तरफ देखना होगा जो तमाम तरह के बुनियादी बदलावों की बात करती है।

इनमें से एक नियामक संस्थाओं में सामंजस्य स्थापित करना भी है। अभी भी भारत में एक

[1]नीति अनुसंधान एवं शासन केंद्र नई दिल्ली

यूनिवर्सिटी चलाने के लिए अलग-अलग नियामक संस्थानों से अनुमति लेनी पड़ती है। यह प्रक्रिया बेहद खर्चीली और थकाऊ है। विभिन्न नियामक संस्थानों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए एक संस्था (HECI) की संस्तुति राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में की गई है, मगर अभी भी वह सतह पर उतर नहीं पाई है। कुछ नियामक संस्थाएं ऐसी हैं, जिनका शिक्षा से कोई लेना नहीं, मगर कोर्स चलाने के लिए उनसे भी अनुमति लेनी पड़ती है। भारत में नियामक संस्थाओं की छवि कभी भी बहुत सकारात्मक नहीं रही है। इसकी एक वजह इसका केंद्रीकृत स्वरूप और पारदर्शिता की कमी भी है। हाल के वर्षों में तकनीक के उपयोग और राष्ट्रीय नीति में शामिल किए गए नियमों के पालन करने की बाध्यता ने काफी कुछ बदला है। यही कारण है कि इस बार के मसौदे से कुछ आस बंधी है कि यह अपने उद्देश्य में सफल होगा।

कुछ असमंजस

इस मसौदे में यूनिवर्सिटी की स्थापना, अध्यापकों की नियुक्ति, प्रवेश आदि विषयों पर तो चर्चा की गई है। मगर बहुत से विषयों पर जानकारी नहीं दिखती है। क्या ये यूनिवर्सिटीज राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मुताबिक सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े समूहों के लिए की गई व्यवस्था का पालन करेंगे या अपनी कोई अन्य व्यवस्था बनाएंगे?

एक प्रश्न भाषा को लेकर भी है क्योंकि मसौदे में इसका कोई उल्लेख नहीं है जबकि शैक्षणिक प्रक्रिया में भाषा एक अहम फैक्टर है। प्रस्तुत मसौदा ऐसे कई प्रश्नों पर अभी या तो चुप है या कोई साफ उत्तर नहीं देता है। फिर भी भारत की शैक्षणिक जरूरतों की नजर से यह एक महत्वपूर्ण कदम है। इससे देश के शैक्षणिक लक्ष्यों को पूरा करने में आसानी अवश्य होगी।

भारतीय शिक्षा और स्कूल में भारी बस्ते

महामारी के बाद, स्कूलों में चीजें बहुत बदल गई हैं। सैनिटाइज़र और मास्क एक बच्चे के जीवन का हिस्सा बन गए हैं। वे भारी बैग भी ले जाते हैं जिससे मानसिक और शारीरिक बोझ पड़ता है। मै कई शिक्षकों और प्रशासकों के साथ इस परचर्चा करने की कोशिश की है लेकिन अभी तक स्कूल के भारी बस्ते का बोझ क्या बताता है यह समझ में नहीं आया है कि एक बच्चे के लिए इतना भारी बैग क्यों जरूरी है। हमारे स्कूल के समय की यादें कई घटनाओं से जुड़ी हुई हैं, जिनमें से कई खेल, आनंद और सीखने के बारे में हैं। फिर भी लगता है कि थैला हमेशा उन यादों पर अपना भारी बोझ डालता है क्योंकि भारी बैग हमेशा डर, सजा और किताब आधारित पाठ्यक्रम से बंधे होते हैं, जो बच्चे के स्वास्थ्य पर अनावश्यक दबाव डालते हैं।

1993 में यशपाल की अध्यक्षता में "लर्निंग विदाउट बर्डन" नामक समिति का गठन किया गया। इसमें बैगों के बढ़ते बोझ के बारे में विस्तार से बात की और इस मुद्दे पर चिंता व्यक्त की। इसने बैग के वजन को कम करने के लिए पाठ्यक्रम में बदलाव का सुझाव दिया। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि सीखने को आनंदमय कैसे बनाया जाए और बच्चों के लिए किताबों और बैग पर कम जोर दिया जाए।

अन्य समितियों ने भी इस मुद्दे पर सुझाव दिए हैं और पाठ्यक्रम में कुछ सुधार किए गए हैं। लेकिन हमारी शिक्षा प्रणाली अभी तक उन्हें पूरी तरह से आत्मसात नहीं कर पाई है क्योंकि बच्चों के बस्ते का वजन नहीं बदल रहा है।

चाहे कोई भी स्कूल हो, फीस कितनी भी ज्यादा हो या शिक्षक कितने भी योग्य क्यों न हों, आखिर में सभी स्कूलों और शिक्षकों की यही सोच बनी रहती है कि ज्यादा से ज्यादा किताबें ले जाने से ही ज्यादा से ज्यादा शिक्षा हासिल की जा सकती है। यह अभी भी एक रूढ़िवादिता है कि जो कोई भी अधिक किताबें और नोटबुक ले जाएगा वह स्वतः ही अधिक ज्ञानी हो जाएगा।

स्कूलों के फिर से खुलने पर हम डर और चिंताओं को कैसे दूर कर सकते हैं इसलिए छात्रों को

प्रतिदिन बैग में सभी किताबें और कॉपी लाना अनिवार्य हो जाता है। पढ़ाने और सीखने के नए तरीके खोजने के बजाय, स्कूल और शिक्षक तकनीकी और भौतिकवादी चीजों जैसे ऐप, किताबों और बैग पर अधिक ध्यान दे रहे हैं। लोगों को यह समझने की जरूरत है कि शिक्षण पद्धति पुस्तकों या अन्य साधनों से अधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षकों के पास कितना भी सैद्धांतिक ज्ञान हो, अगर वे उसे बच्चे को नहीं पढ़ा सकते, तो यह व्यर्थ है। हाल के दिनों में स्कूली शिक्षा में सुधार के प्रयास किए गए हैं।

यदि कक्षा के वातावरण को रुचिकर बनाना है तो बच्चों को छोटे-छोटे समूहों में पढ़ाना चाहिए। इसका मतलब है कि कक्षा के आकार को कम करना होगा। लेकिन इसका तात्पर्य यह है कि कक्षाओं की संख्या बढ़ानी होगी जिसके लिए अधिक शिक्षकों की आवश्यकता होगी। इसके लिए हमें अधिक योग्य शिक्षकों की आवश्यकता है जो न केवल बच्चे की मनःस्थिति को समझ सकें बल्कि उसके अनुसार पाठ्यक्रम को लागू भी कर सकें। शिक्षा का अधिकार विधेयक ने कक्षा के आकार को कम करने का आह्वान किया था। लेकिन इतने सालों के बाद भी पूरे राज्य में कक्षाओं का आकार एक जैसा ही रहा है।

सवाल यह है कि क्या हमारे पास इस समस्या को हल करने के लिए पर्याप्त कौशल वाले शिक्षक हैं। हम जानते हैं कि प्रश्न जटिल है, क्योंकि हमें अधिक योग्य शिक्षकों की आवश्यकता है जो पाठ्यक्रम और बच्चे के मन को समझते हों। गुणवत्तापूर्ण शिक्षकों की संख्या इस बात पर निर्भर करती है कि हमारे विश्वविद्यालय/कॉलेज अच्छे शिक्षक प्रदान कर सकते हैं या नहीं। इसका समाधान खोजने के लिए हमें अपने आसपास उत्तर तलाशने होंगे।

कोविड के बाद की कक्षा में बेहतर सीखने के लिए केंद्र सरकार के अधीन राष्ट्रीय शिक्षक प्रशिक्षण परिषद (एनसीटीई) के पास शिक्षकों के लिए न्यूनतम योग्यता निर्धारित करने, पाठ्यक्रम तैयार करने और शिक्षक प्रशिक्षण के लिए नए कॉलेज खोलने की सुविधा देने का कार्य है। लेकिन, शिक्षकों के चयन और भर्ती का काम राज्य सरकार के पास है। यदि आप संघीय ढांचे की सराहना करना चाहते हैं तो यह प्रणाली अच्छी है। फिर भी, मान लीजिए कि आप वास्तव में स्कूल और शिक्षकों की गुणवत्ता से परेशान हैं। ऐसे में आपको यह समझना चाहिए कि हमारी शिक्षा प्रणाली लाख कोशिशों के बाद भी क्यों नहीं सुधर रही है क्योंकि शिक्षा समवर्ती सूची में आती है। इसे सुधारने की जिम्मेदारी कोई नहीं लेना चाहता। बस्ते का बोझ हमारी शिक्षा व्यवस्था की नाकामी की कहानी कहता है। यह हमें बताता है कि शिक्षक हमारे बच्चों को किताबों के बिना पढ़ाने में सक्षम नहीं हैं। यह हमें शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के बारे में भी बताता है; कि इतने वर्षों के बाद भी वे कुशल शिक्षक पैदा नहीं कर पाते जो बस्ते का बोझ कम कर सकें।

नया राष्ट्रीय पाठयचर्या ढांचा (आधारभूत चरण) एक बहुत ही प्रगतिशील दस्तावेज है जो कक्षाओं से परे बात करता है। दस्तावेज़ सामग्री की तुलना में शिक्षाशास्त्र पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है और गतिविधियों को प्रोत्साहित करता है। यह शिक्षकों को शिल्प, संगीत, खिलौने, स्थानीय कहानियों का उपयोग करने के लिए कहता है और बच्चे की मातृभाषा के महत्व पर ध्यान देता है। यह परीक्षाओं को हतोत्साहित करता है और अवलोकन मूल्यांकन पर अधिक जोर देता है। यह NEP-2020 के आलोक में व्यवस्थित परिवर्तन की बात करता है। यह शिक्षक, छात्रों और अन्य हितधारकों के महत्व को स्वीकार करता है। नया एनसीएफ एक बहुत ही महत्वपूर्ण दस्तावेज है और अगर इसे उसकी भावना में लागू किया जाए तो यह भारत के शैक्षिक परिदृश्य को बदल सकता है। इस दस्तावेज़ की मुख्य चुनौती इसके कार्यान्वयन के लिए राज्य सरकार और शिक्षकों को तैयार करना है। राज्यों में बिना किसी राजनीतिक विचार के शैक्षिक परिवर्तन के कुछ सकारात्मक पहलुओं को स्वीकार करने की आवश्यकता है।